धर्मनिरपेक्षता पर प्रहार करतीं पाठ्यपुस्तकें

राजीव गुप्ता

शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ी विसंगति उस समय उत्पन्न होती है जब शिक्षा स्वयं में एक हथियार का रूप लेकर सामाजिक विपत्तियों की उत्पति का आधार बन जाए और इन विपत्तियों के विरुद्ध 'प्रतिरोध के कृत्यों' को अवरुद्ध कर दे। शिक्षा को ऐसे हथियार के रूप में राजसत्ता निर्मित करती है ताकि अपने वर्गीय हितों का संरक्षण किया जा सके। यह स्थिति भारतीय समाज में वर्तमान दौर में और अधिक जटिल हुई है क्योंकि ''राज्य का दायां अंग यह नहीं जानता अथवा यह जानना ही नहीं चाहता कि राज्य का बांया अंग क्या कर रहा है'' (पीयरे बुर्दियो : एक्ट्स ऑफ रैजिस्टेन्स, पृष्ठ 2)। यहां बुर्दियो शिक्षकों सहित अनेक सामाजिक श्रेणियों को 'बांये अंग की' की तथा प्रौद्योगिकी विद्, बैंक एवं मंत्रियों आदि को दांये अंग की संज्ञा देते हैं। वर्तमान प्रधानमंत्री द्वारा एक प्राइवेट न्यूज चैनल 'टाइम्स नाओ' को दिया साक्षात्कार इसका प्रमाण है। 29 जून, 2016 को नेहरू मैमोरियल म्युजियम एण्ड लाइब्रेरी में इस संस्थान के अध्यक्ष लोकेश चन्द्रा का कथन कि, 'भारत को बदलना है यह अब नेहरू का विश्व नहीं रहा है' इस कथन की पुनः पुष्टि करता है क्योंकि पिछले वर्ष (2015) में सूचना का अधिकार के अन्तर्गत दायर एक पत्र के उत्तर में वर्तमान सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति ने कहा कि 'वे नेहरू की विश्व दृष्टि के प्रति प्रतिबद्ध रहना चाहते हैं' (द हिन्दू, 30 जून, 2016, पृ.12)। ये विसंगतियां भारतीय नागरिकों को भ्रम में बनाए रखने का राज्य का प्रयास है ताकि सामाजिक-आर्थिक मुद्दों से ध्यान भटकाकर नव्य उदारवादी आर्थिक ताकतों को स्वयं को और मजबूत करने में कोई कठिनाई न हो। यहां एक प्रश्न या जिज्ञासा अवश्य उत्पन्न होती है, 'क्या नेहरू के विश्व का न रहना स्वाधीनता संघर्ष के बहुवैचारिक दौर का न रहना है?' साथ ही एक वैचारिकी भी उभरती है कि क्या राज्य ने कॉरपोरेट शक्तियों के सम्मुख समर्पण कर दिया है ताकि समाज में 'हाशिए पर खड़ी जनता' को इन शक्तियों की अधीनस्थता को स्वीकारने हेतु बाध्य होना पड़ें'। पाठ्यपुस्तकों में हो रहे बदलावों (राजस्थान, मध्य प्रदेश हरियाणा, गुजरात आदि) को इन संदर्भों के साथ समझने की जरूरत है क्योंकि यह बदलाव, जो कि कक्षा एक से हो रहा है, एक ऐसी पीढ़ी को निर्मित करेगा जो धुर दक्षिण पंथी (परम्परागत, अस्मिता संस्कृति केन्द्रित, हम बनाम् वे के विभाजन की वैधता, सांस्कृतिक/धार्मिक राष्ट्रवाद केन्द्रित चेतना एवं आक्रामकता) विचारधारा की समर्थक होगी और साथ ही भाग्यवादिता के साथ बाजार कट्टरतावाद के सम्मुख समर्पण करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं करेगी।

शिक्षक, पाठ्यपुस्तक, पाठ्यपुस्तक लेखक एवं विद्यार्थी शिक्षा के उस संरचनात्मक परिवेश को निर्मित करते हैं, जिसमें ज्ञान एवं सूचना केन्द्रित कक्षा अन्तःक्रिया का तंत्र आकार लेता है। विद्यार्थी सामान्यतः शिक्षक एवं पाठ्यपुस्तक की विश्वसनीयता को चुनौती नहीं देते अतः प्रेषित ज्ञान व सूचना 'स्थापित ज्ञान व सूचना' का रूप ले लेते हैं। सामान्यतः इन सूचनाओं एवं ज्ञान के पक्षों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण, वैधता, विश्वसनीयता एवं सत्यापनशीलता की विशेषताओं पर आधारित होना चाहिए। वैचारिकी की विविधता एवं बाहुल्यता की प्रस्तुति पूर्वाग्रहों, घृणा, विद्वेष एवं विभाजनात्मक शैली से इतर हो और शिक्षाशास्त्रीय प्रस्तुति

ऐसी हो कि विद्यार्थी बिना किसी भय के विकल्पों में से उपयुक्त विकल्प चुनने को स्वतंत्र हो। सृजनशीलता हेतु ऐसा परिवेश स्थापित होने पर शिक्षा का उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षा का लेखक की दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य हर प्रकार के शोषण से मुक्ति की चेतना का आन्तरीकरण एवं इस हेतु लोकतांत्रिक जन आन्दोलनों में सजग सहभागिता की स्वीकृति है। परन्तु पिछले दो वर्षों में (हालांकि ऐसे प्रयास पूर्व में भी हुए हैं) धार्मिकता पर केन्द्रित हिन्दू जीवन दर्शन एवं हिन्दुत्व का राजनीतिक एजेण्डा जिसमें (धार्मिक) असहिष्णुता सम्मिलित है का प्रवेश राजसत्ता के द्वारा शिक्षा, संस्कृति, राजनीति, अर्थतंत्र, व्यक्तित्व विकास के मनोविज्ञान आदि प्रणालियों में तीव्र गति से हुआ है। परिणामस्वरूप संकीर्णतावाद, साम्प्रदायिकता, कट्टरतावाद एवं हिंसा को वैधता प्राप्त हुई है। पाठ्यपुस्तकों में इस प्रभाव को हम स्पष्ट रूप में देख सकते हैं जहां हिन्दुत्व की गौरवशाली प्रस्तुति है और शेष के साथ स्पष्ट एवं छिपे हुए पूर्वाग्रह एवं घृणाभाव हैं। पाठ्यपुस्तकों में निहित अन्तर्वस्तु के मूल्यांकन में हमें सावधानीपूर्वक निम्नलिखित पक्षों की पड़ताल भी करनी चाहिएः

1. लैंगिक अस्मिताओं की प्रकृति, 2. प्रजातीय व जातीय सवालों के स्वरूप, 3. शोषण, दमन एवं असमानताओं की उपस्थिति, 4. लोकतांत्रिक असहमति संबंधी दृष्टिकोण

इन पक्षों की पड़ताल इसलिए आवश्यक है क्योंकि कक्षा एक से कक्षा बारह तक शिक्षा के माध्यम से हुआ समाजीकरण व्यक्तित्व में ऐसे 'स्थाई भाव' स्वाभाविकता के साथ विकसित करता है जिनमें जीवन पर्यन्त बदलाव की सम्भावनाएं कम हैं। हम इसे एक सीमा तक 'मतारोपण' की संज्ञा दे सकते हैं। राजसत्ता इस कारण शिक्षा एवं शिक्षाशास्त्र को अपने एजेण्डा में महत्व देती है हालांकि अपनी लोकतांत्रिक छवि को बनाए रखने की कोशिश में वह 'शिक्षा की स्वायत्तता' का व्यापक समर्थन करती है। अतः शिक्षक, लेखक एवं सजग नागरिक को विद्यार्थी को केन्द्र में रखकर यह जानना होगा कि सूचना एवं ज्ञान के सृजन, पुनरुत्पादन एवं वितरण में किन पक्षों का समावेश हो रहा है तथा किनको बाहर किया जा रहा है या बाहर करने को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कहा जा रहा है। प्रयासों का यह संगठित समुच्चय शिक्षा के वर्गीय स्वरूप से जुड़े राजनीतिक अर्थवाद को समझने में सहायक है। पर इस विषय पर इस आलेख में चर्चा लेखक का ध्येय नहीं है।

इस पृष्ठभूमि के साथ हम कक्षा छहः से कक्षा ग्यारह तक की समाज विज्ञान की उन कुछ पुस्तकों के विश्लेषण का प्रयास करेंगे, जिन्हें राजस्थान की वर्तमान राज्य सरकार के निर्देशों पर प्रकाशित किया गया है। भाजपा शासित सरकारों द्वारा इस तरह के प्रयास अपने-अपने शासित राज्यों में किए जा रहे हैं। हालांकि इन प्रयासों को एक-दूसरे के राज्यों में लागू किया जाएगा। उदाहरण के लिए हरियाणा के शिक्षा राज्य मंत्री का मत है कि जनसंघ के संस्थापक श्यामाप्रसाद मुखर्जी, वीर सावरकर, गीता एवं विभिन्न धर्मों की 'पवित्र पुस्तकों' को मूल्य शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों को पढ़ाया जाएगा। व्यक्तित्व विकास हेतु जीवन में 'सूर्य' की भूमिका एवं राष्ट्रवाद तथा देशभक्ति की भावना के उभार हेतु नैतिक कर्त्तव्यों की शिक्षा दी जाएगी। राज्य सरकार के इन प्रयासों में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्पष्ट व प्रभावी सहभागिता है। नैतिक या मूल्य शिक्षा की इन पुस्तकों को भाजपा शासित अन्य राज्यों में भी प्रारम्भ किया जाएगा (द हिन्दू, पृ. 7, 30 जून, 2016)। राजस्थान के शिक्षामंत्री ने भी अकबर महान या महाराणा प्रताप महान और पुस्तकों में किन्हें सम्मिलित करें और किन्हें बाहर करें की बहस को जन्म देकर घोषित किया कि विषय संरचना को शिक्षकों के समूहों के स्थान पर राजसत्ता निर्धारित करेगी। मध्य प्रदेश व गुजरात में भी राजसत्ता के निर्देशों से शिक्षा का स्वरूप संचालित हो रहा है। ऐसी स्थिति में पाठ्यपुस्तकों के गहन मूल्यांकन की कोशिशें स्वयं में एक 'चेतना आन्दोलन' बन सकती हैं।

राजस्थान की वर्तमान राज्य सरकार जो कि भाजपा द्वारा निर्मित है, एक कथित 'धार्मिक-सांस्कृतिक राष्ट्रवादी विचारधारा की पोषक है जिसमें (1) अनेक मिथकों को एतिहासिक वास्तविकता बताया जाता है (2) संस्कृत के प्रभुत्व से निर्देशित जटिल हिन्दी को लेखन में प्राथमिकता देकर इसे लोकप्रिय (जन) हिन्दी से पृथक किया जाता है (3) प्राचीन (हिन्दू) भारत सर्व श्रेष्ठ है और तत्कालीन विश्व सभ्यताओं से न केवल बहुत आगे हैं अपितु मार्ग दर्शक है (4) मध्य युगीन भारत 'डार्क एज' है जो समस्त समस्याओं को जन्म देती है तथा (5) स्वाधीनता संघर्ष में कांग्रेसी

व वामपंथी भूमिका की उपेक्षा है, के तत्व सम्मिलित हैं। इस धार्मिक-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में हिन्दू (आर्य) भारत के मूल निवासी हैं और वे सर्वश्रेष्ठ व्यवस्थाओं एवं प्रौद्योगिकी के सृजक हैं। राज्य सरकार ने सांस्कृतिक-धार्मिक राष्ट्रवाद के इस स्वरूप को कक्षा एक की पुस्तकों से प्रारम्भ कर धीरे-धीरे विस्तार दिया है ताकि उस 'एजेण्डा' को व्यक्तित्व का भाग बनाया जा सके, जिसमें 'हम' अर्थात् हिन्दू बहु-संख्यक सर्वश्रेष्ठ है और 'वे' विशेषतः मुसलमान (इस्लाम) शोषण, दमन, असमानता एवं अन्याय केन्द्रित व्यवस्थाओं को भारत में निर्मित करते हैं। यही 'अंधकार का युग' है जिसे औपनिवेशिक एवं उत्तर औपनिवेशिक भारत में धर्मनिरपेक्षता के मूल्य द्वारा संरक्षण दिया जा रहा है। वामपंथ व नेहरू इस संरक्षण के केन्द्र में हैं। अतः इस संरक्षण को समाप्त करने हेतु पुस्तकों में बदलाव तथा व्यक्तित्व में शौर्य एवं आक्रामकता के भावों का समावेश अनिवार्य है। बच्चे चूंकि प्रारंभ में बिना किसी बहस के इस शिक्षण का आन्तरीकरण कर लेंगे अतः इन पुस्तकों में अप्रत्याशित रूप से तत्काल परिवर्तन या संशोधन कर दिए गए। यह एक चौकाने वाला तथ्य है कि इन पुस्तकों के प्रकाशन में 'यूनिसेफ' ने वित्तीय एवं तकनीकि सहयोग दिया है। 'यूनिसेफ' अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं बाहुल्यता मूलक संस्कृति के समर्थन एवं संरक्षण का दावा करती है। शायद 'यूनिसेफ' ने पुस्तकों की अन्तर्वस्तु की उपेक्षा की है। हालांकि इन पुस्तकों के पूर्व की पुस्तकों के प्रकाशन में 'आई.सी.आई.सी.आई फाउण्डेशन फॉर इन्क्लूसिव ग्रोथ' संस्थान की प्रमुख भूमिका थी। क्या इन भूमिकाओं को 'शिक्षा के व्यवसायीकरण' के कुछ पहलुओं से जोड़ा जा सकता है?

चूंकि सामाजिक विज्ञान के अनेक पक्ष सामाजिक विज्ञान की पुस्तकों के इतर पुस्तकों में भी अभिव्यक्त होकर समाज के बोध को उभारते हैं अतः इस आलेख में ऐसी कुछ पुस्तकों को भी विश्लेषण में सम्मिलित किया गया है। समाज की प्रकृति को समझने की कोशिश इस विश्लेषण का एक लक्ष्य है।

सत्र 2015-16 की आठवीं कक्षा की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक की तुलना सत्र 2016-17 हेतु प्रकाशित नवीन पुस्तक से करें तो कुछ प्रश्न उभरते हैं जो विषय विश्लेषण से भिन्न हैं:

1. क्या ये नवीन पुस्तक पूर्व पुस्तक का संशोधित रूप है? यदि हां तो पूर्व पुस्तक के लेखकों की इसमें चर्चा (भले ही आभार व्यक्त करने को हो) क्यों नहीं है और यदि ये नवीन पुस्तक है तो पूर्व की पुस्तक की अन्तर्वस्तु की अनेक स्थानों पर पुनरावृत्ति या केवल भाषाई बदलाव के अन्तर्वस्तु को प्रस्तुत करना 'अकादमिक अनैतिकता' नहीं है?
2. पूर्व की पुस्तक की संरचना के निर्माण में पचास शिक्षा एवं अशैक्षणिक कर्मियों का योगदान है जबकि वर्तमान पुस्तक में केवल 28 कर्मियों का योगदान है। इन कर्मियों की विशेषतः शिक्षा कर्मियों की संख्या को क्यों कम किया गया?
3. इन नवीन पुस्तकों की पठन सामग्री को तैयार करने में पूर्व पुस्तकों की तुलना में कितना समय लगा? इन नवीन पुस्तकों में उन स्रोतों (संदर्भ पुस्तकों आदि) के उल्लेख क्यों नहीं हैं जहां से सूचना एवं अध्ययन सामग्री को संकलित किया गया है? तथा
4. इन पाठ्यपुस्तकों के लेखकों अर्थात् विषय निर्माण समिति की रचना का आधार क्या था? इस निर्माण प्रक्रिया में राजस्थान के बाहर के लेखकों एवं राजस्थान के विभिन्न जिलों, जिनकी संख्या 33 है, में से कितने जिलों के शिक्षकों को सम्मिलित किया? इन सवालों के साथ एक अन्य सवाल भी पूछा जाना चाहिए कि इतना शीघ्र पुस्तक परिवर्तन क्यों आवश्यक था और इस शीघ्रता का वित्तीय प्रभाव क्या रहा?

कक्षा तीन की पर्यावरण अध्ययन की पुस्तक में आए पाठ 12 (हमारे गौरव-1) में प्राचीन रसायन शास्त्री नागार्जुन, वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु, भगिनी निवेदिता एवं महात्मा गांधी तथा बिरसा मुण्डा की चर्चा है। ये सभी (केवल निवेदिता के अलावा जो विवेकानन्द की शिष्य थी) वेदों, रामायण, महाभारत एवं गीता आदि का अध्ययन करते थे। क्या हमारे (?) गौरव में स्थान पाने के लिए हिन्दू धर्म के धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन आवश्यक है की चेतना प्रारम्भ से ही उत्पन्न नहीं की जा रही। गाड़ोलिया लुहार गाड़ी में घर बनाकर क्यों रहते हैं इसके पीछे एक कहानी की चर्चा

की गई है। 'चित्तौड़ पर जब मुगलों का आक्रमण हुआ तो इन सहित अनेक जातियां विस्थापित हो गईं। गाड़ोलिया लुहार के पूर्वजों ने प्रण किया है कि जब तक संपूर्ण मेवाड़ आजाद नहीं हो जाता वे घर में नहीं रहेंगे (पृ. 98)। क्या इस 'कहानी' के पीछे कोई प्रमाण है? उस स्रोत का उल्लेख नहीं है। कक्षा 4 की अपना परिवेश-पर्यावरण अध्ययन के पाठ 15 (हमारे गौरव-2) में चरक, सुश्रुत, रानी दुर्गावती, सावरकर तथा पटेल की चर्चा है। ये सभी गौरव बहुसंख्यक समूह/जनसंख्या से संबंद्ध हैं और 'हमारे' हैं तो चेतना में यह सोच उभरता है कि क्या अन्य समूहों (अल्प संख्यक समूहों) में कोई भी व्यक्तित्व ऐसा नहीं है जो 'हमारे गौरव' का भाग बन सके? पाठ का शीर्षक इस कारण से भी 'हमारा' एवं 'तुम्हारा' को सामने लाकर भारत के गौरव को विभाजित करने का भाव देता है। नेहरू की चर्चा इन पुस्तकों में नहीं है। ठीक ऐसे ही कक्षा तीन की अंग्रेजी की पुस्तक लेट'स लर्न इंग्लिश में महात्मा गांधी, सरदार पटेल, वी.डी. सावरकर एवं महर्षि अरविन्द (पृ. 123), भगत सिंह, चन्द्र शेखर आजाद एवं लक्ष्मी बाई (पृ. 116) तथा राजस्थान के स्वतंत्रता सैनानियों के उललेख हैं। विद्यार्थी को यह भी संदेश दिया गया है कि सरकार अथवा शासक के विरुद्ध कोई कृत्य या योजना को षडयंत्र (कांसपिरेसी) कहा जाता है। कक्षा चार की अंग्रेजी की पुस्तक लेट'स लर्न इंग्लिश में सिंह के साथ भारत माता की तस्वीर की प्रस्तुति है (पृ. 128)। कक्षा 6 की इंग्लिश रीडर में महाराणा प्रताप, महात्मा गांधी, शिवाजी, स्वामी विवेकानंद, दीनदयाल उपाध्याय एवं डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी का उल्लेख है (पृ. 45)। कक्षा 7 की अंग्रेजी की पुस्तक इंग्लिश रीडर में शिक्षक दिवस का उल्लेख है। इस संदर्भ में डॉ. सर्वपल्लि राधाकृष्णन का उल्लेख नहीं है पर प्रधानमंत्री की 'मन की बात' के प्रसारण की चर्चा है (पृ. 75)। कक्षा पांच की हिन्दी की पुस्तक में 16वां पाठ सरदार पटेल पर है इस पाठ में रियासतों के एकीकरण में पटेल की भूमिका का उल्लेख भर है। पाठ का अधिकांश भाग पटेल के द्वारा सोमनाथ मंदिर के पुनर्निमाण पर केन्द्रित है तथा इस प्रयास को राष्ट्रीय स्वाभिमान की सुरक्षा से जोड़ा गया है (पृ. 76-77)। कक्षा छहः की हिन्दी की पुस्तक का आठवां पाठ (गुलाब सिंह) परोक्ष रूप से धार्मिक विभाजन व उन्माद की प्रस्तुति है। पाठ-9 में मिथकीय गौरव के धार्मिक संदर्भ हैं जबकि पाठ-12 (मुण्डमाल) धार्मिक वैमनस्य एवं जातीय गौरव के साथ सती/जौहर का महिमामण्डन करता है।

यह पुस्तकें हिन्दुत्व की गौरवशाली प्रस्तुति, अल्प संख्यकों विशेषतः इस्लाम के प्रति पूर्वाग्रह, व्यक्तित्व में आक्रामकता, मिथकों को वास्तविकता मानना तथा स्वाधीनता संघर्ष में हिन्दुत्व की उपस्थिति की कोशिश करती हैं। इन प्रारंभिक कक्षाओं में उपरोक्त पुस्तकों का अध्ययन विद्यार्थी को 'हिन्दू भारत' के बोध से परिचित कराता है ताकि साझा सांस्कृतिक विरासत के भारत की समझ धूमिल हो सके। जिस तरह औपनिवेशिक सत्ता ने अपने हितों की पूर्ति हेतु विभाजन एवं अलगाव की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया था, ठीक वही प्रवृत्तियां शिक्षा के माध्यम से वर्तमान में राजसत्ता द्वारा प्रोत्साहित की जा रही हैं। चूंकि सरकारी (राज्य सरकार) विद्यालयों एवं राजस्थान बोर्ड (यह किसी भी राज्य के बोर्ड हो सकते हैं) से संचालित निजी विद्यालयों में निम्न वर्ग के विद्यार्थियों के नामांकन का बहुमत है अतः इस प्रकार की विभाजन मूलक एवं धर्म के वर्चस्व वाली तथा स्वाधीनता संघर्ष के मूल्यों की उपेक्षा करने वाली शिक्षा को भविष्य में निम्न वर्ग सहमति प्रदान कर देगा और जन संघर्षों के स्वरूप बदल कर विभाजन मूलक हो जाएंगे। यही एक किस्म का 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' कहलाएगा।

सामाजिक विज्ञान की पुस्तकों का मुख्य उद्देश्य समाज के विभिन्न पक्षों (सामाजिक संबंध, संस्कृति, आर्थिकी, राजनीति, इतिहास आदि) को जो 'स्थानीय' से लेकर 'वैश्विक' तक से संबंद्ध हैं, विद्यार्थियों के सम्मुख व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना है। इन पुस्तकों में प्रस्तुत सूचना एवं ज्ञान पक्षों के साक्ष्यों के स्रोत दिए जाने आवश्यक हैं ताकि विश्वसनीयता को स्थापित किया जा सके।

मिथक एवं कल्पनाएं भी प्रस्तुत की जाती हैं ताकि पुस्तक को रुचिपूर्ण बनाया जा सके पर यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि ये मिथक व कल्पनाएं हैं। यहां यह स्वीकारना चाहिए कि पुस्तक के लेखक 'लेखकीय अनुशासन' एवं 'लेखकीय आचार संहिता' की रचना पाठकों के संदर्भ के साथ भी करते हैं। यदि पाठक विद्यार्थी है और विद्यालयी शिक्षा से सम्बद्ध है तो यह 'अनुशासन' एवं 'आचार संहिता' अधिक महत्वपूर्ण एवं जवाबदेह बन जाती है। सामाजिक विज्ञान की कक्षा 6 की पुस्तक के प्रथम अध्याय में 'हमारा ब्रह्माण्ड' में सप्तर्षि मंडल एवं ध्रुव तारे की कहानियों

का उल्लेख निश्चय ही मिथकीय है। लेखक इसे स्वीकारता है (पृ. 2-3) परन्तु पौराणिक काल (पृ. 2) कौन सा है के बारे में चर्चा नहीं है। क्या यह काल स्वयं में 'इतिहास का युग' है या 'इतिहास के युग' का एक भाग है? पाठ 3 (अंतरिक्ष खोज) में आर्यभट्ट, वराहमिहिर एवं भास्कराचार्य द्वितीय का उल्लेख है पर वराहमिहिर के योगदान की चर्चा नहीं है (पृ. 7) अतः अस्पष्टता एवं अपूर्णता आ जाती है। अध्याय 8 में राहुल एवं आशीष का उदाहरण देते हुए यह कहना कि 'आशीष को सेवा एवं मदद करने की शिक्षा उसे अपने परिवार से प्राप्त हुई थी' (पृ. 58) एक पक्षीय विचार है क्योंकि इसका दूसरा पक्ष यह है कि राहूल में जो कटुता है वह भी परिवार से प्राप्त हुई है। परिवार को पूर्ण रूपेण उत्तरदाई बताना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। 'हम में से हर कोई एक परिवार में पैदा हुआ है' (पृ. 58) के विचार में त्रुटि है क्योंकि प्रत्येक बच्चे का जन्म परिवार में हो आवश्यक नहीं है। लेखक ने 'एकल' एवं 'छोटे' परिवार को समानार्थक रूप दे दिया है जो गलत है (पृ. 59)। लेखक निम्न वर्ग के प्रति पूर्वाग्रही लगते हैं जब एक उदाहरण में वे कहते हैं, 'सोचिए! यदि विद्यालय का सहायक कर्मचारी कमरों की सफाई न करे या समय पर घण्टी न बजाए और यदि आपके अध्यापक जी बीमार हो जाएं और आपका पाठ्यक्रम पूरा न हो (पृ. 61)। अध्याय नौ में धर्म एवं पंथ को समानार्थक बताया गया है (पृ. 65)। अध्याय चौदह में यह उल्लेख तो है कि 2 अक्टूबर, 1959 को पंचायती राज व्यवस्था का प्रारंभ नागौर (राजस्थान) से हुआ था पर नेहरू के नाम की चर्चा नहीं है। इस पुस्तक सहित अन्य पुस्तकों में भी सिन्धु घाटी की सभ्यता को सिन्धु सरस्वती सभ्यता/सरस्वती सिन्धु सभ्यता के नाम से लगातार प्रस्तुत किया गया है। सरस्वती नदी का विवरण दिया गया है (पृ. 117) परन्तु प्रामाणिकता अब तक स्थापित नहीं हो सकी है। ऐतिहासिक तथ्यों से छेड़छाड़ तथा इतिहास को अपनी वैचारिकी के अनुकूल बनाने का यह प्रयास खतरनाक एवं शिक्षा विरोधी है। अध्याय 17 (वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति) हिन्दुत्व के गौरवशाली पक्षों एवं निर्मित अतीत को स्थापित करने का प्रयास है। लेखक किसी भी स्तर पर सभ्यता एवं संस्कृति का अन्तर स्थापित नहीं कर सके हैं। वैदिक धर्म व दर्शन को दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी बताकर (पृ. 123) सर्व श्रेष्ठता स्थापित करने की कोशिश की गई है। वैदिक काल में लड़के-लड़कियों को समान रूप से शिक्षा दी जाती थी (पृ. 123) के विचार का कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है। सोलह संस्कारों के महत्व को भी रेखांकित किया गया है। इस काल में एक पत्नी प्रथा के प्रचलन का भी उल्लेख किया गया है (पृ. 124)। आश्रम व्यवस्था की प्रकार्यात्मकता को स्थापित किया गया है। साथ ही वर्ण व्यवस्था के प्रारम्भिक स्वरूप को बहुत अच्छा बताया गया है (पृ. 125)।

अध्याय 18 (महाजन पद कालीन भारत एवं मगध साम्राज्य) में कोसल जनपद की चर्चा करते हुए 'प्राचीन काल में दिलीप, रघु, दशरथ एवं श्रीराम आदि सूर्यवंशीय शासकों ने (कोसल) इस पर शासन किया था' का उल्लेख कर दशरथ एवं राम को प्राचीन इतिहास का भाग बना दिया गया है (पृ. 130)। ठीक ऐसे ही कुरु को महाभारत काल का एक प्रसिद्ध राज्य बताकर प्रस्तुति की गई है (पृ. 131)। शूरसेन जनपद के संदर्भ में श्री कृष्ण की चर्चा की गई है (पृ. 132)। कक्षा 6 की इस पुस्तक में साझा सांस्कृतिक विरासत तथा बौद्ध एवं जैन धर्म से संबद्ध दार्शनिक पक्षों की अनुपस्थिति है। कक्षा 7 की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक का मुख पृष्ठ सामन्ती जीवन शैली एवं जातीय शौर्य के साथ धार्मिक बाहुल्यता को व्यक्त करता है। इस पुस्तक में जल एवं पृथ्वी/भूमि के पाठों को हिन्दु धर्म के संदर्भों के साथ प्रारम्भ किया गया है। यह पुस्तक समाज की विवेचना समान संस्कृति की विशेषता वाले समूह के रूप में कर (पृ. 65) समरूपीयकरण के तर्क को वैधता देती है जो कि सांस्कृतिक बाहुल्यता एवं विविधता का निषेध है। यह इस विचार को स्थापित करती है कि हमें लापरवाही, हड़ताल जैसी गतिविधियों से बचना चाहिए (पृ. 67)। पुस्तक व्यक्त करती है कि प्राचीन भारत में नारी की स्थिति सुखद थी जो कि विशेषकर मध्यकाल में कमजोर हो गई। बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा मध्यकाल की देन है (पृ. 76)। अध्याय 12 में भारतीय संविधान की संशोधन पूर्व की प्रस्तावना का चित्र प्रदर्शित किया गया है (पृ. 91)। अध्याय 14 में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के समकक्ष 'स्वच्छ भारत अभियान' को प्रस्तुत किया गया है (पृ. 113)। साथ ही मीडिया को 'उत्तरदाई मीडिया' के रूप में भूमिका निर्वाह की सलाह दी गई है और नकारात्मक एवं अनावश्यक सनसनीखेज रिर्पोटिंग के लालच से बचने को कहा गया है (पृ. 114)। अध्याय 15 (वृहत्तर भारत) प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से वर्तमान भौगोलिक सीमाओं के परे भारत की उपस्थिति की विवेचना है और भारतीय (हिन्दू) संस्कृति के विभिन्न देशों में प्रभाव को दर्शाया गया है।

यह पाठ अनेक स्तरों पर 'सांस्कृतिक विस्तारवाद' को गौरवान्वित करता है। यह पाठ एक तथ्य अवश्य सामने लाता है। समाज की चर्चा (पृ. 121) करते हुए यह कहा गया है, 'विवाह का आदर्श, विभिन्न प्रकार की रस्में... लगभग भारत के समाज की तरह ही थे (यह कम्बुज अर्थात् कम्बोडिया के साथ तुलना है), सती प्रथा भी प्रचलित थी। भारत के प्राचीन समाज की तरह... '(पृ. 121)। अर्थात् प्राचीन भारतीय समाज में सती प्रथा का प्रचलन था जबकि पृष्ठ 76 पर सती प्रथा को मध्यकाल की देन बताया गया है। लेखकों का विस्तारवाद के प्रति आकर्षण अध्याय 16 (हर्षकालीन व बाद का भारत) में भी उभरता है। उनके अनुसार, 'हर्ष महान विजेता था। इसका प्रमाण उस विशाल क्षेत्र से मिलता है जिसे उसने अपने अधिकार में लिया (पृ. 126)। अध्याय 17 (राजस्थान व दिल्ली सल्तनत) में महसूद के द्वारा मन्दिरों के तोड़ने की चर्चा है तथा कहा गया है, 'महमूद के आक्रमणों से भारत की संस्कृति के प्रतीक कई मन्दिर और स्मारक नष्ट हो गए' (पृ. 132)। जलालुद्दीन ने भी मन्दिरों को क्षतिग्रस्त किया। अलाउद्दीन के मुस्लिम सैनिकों ने भी भव्य भवनों व मन्दिरों को धराशायी किया (पृ. 134)। बार-बार मन्दिरों के तोड़ने की चर्चा हिन्दु बनाम मुस्लिम की चेतना स्थापित कर देती है। पाठ 18 (राजस्थान के राजवंश एवं मुगल) में 'वीर शिरोमणि' महाराणा प्रताप 'महान' का विस्तार से विवेचन है (पृ. 139-143)। इसके उपरान्त 'स्वाभिमानी' अमर सिंह राठौड़, वीर दुर्गादास राठौड़ एवं 'महाराजा सूरजमल' की चर्चा है। उपरोक्त विशेषणों का प्रयोग सामान्तवाद को गौरवान्वित करता है। अध्याय 20 में निजामुद्दीन औलिया के उल्लेख में कहा गया है कि 'एक विशेष धर्म के अनुयायी होते हुए भी औलिया में धार्मिक एवं सामाजिक कट्टरता नहीं थी' (पृ. 168)। अध्याय 21 (लोक-संस्कृति) में कैला देवी, जमवाय मामा, करणी माता, जीण माता व त्रिपुरा सुन्दरी के रूप में प्रमुख शक्ति पीठों का उल्लेख है (पृ. 170-173)। पूर्व की पुस्तकों की भांति यह पुस्तक भी हिन्दू जीवन शैली व हिन्दू धर्म के प्रतीकों को भारतीय संस्कृति के रूप में स्थापित करती है और शौर्य तथा आक्रामकता के रूप में हिंसा को वैधता देती है। कई स्थलों पर यह पुस्तक पूर्वाग्रही व एक पक्षीय है। जैसे पृष्ठ 70 पर उल्लेख है कि, 'सामासिक संस्कृति का आधार संस्कृत भाषा और साहित्य है जिसमें सहिष्णुता सन्निहित है।' इस प्रकार का विभाजन मूलक समाजीकरण बच्चों को आक्रामक बनाकर भविष्य में बच्चों को हिंसक व्यवहार हेतु प्रेरित कर सकता है जो कि राजसत्ता का एक उद्देश्य है क्योंकि धार्मिक/सांस्कृतिक राष्ट्रवाद हेतु यह एक जरूरत है।

कक्षा आठ की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक इस सामाजिक विभाजन को और विस्तार देती है। अध्याय एक (हमारा भारत) का प्रारम्भ 'भारत एशिया महाद्वीप के दक्षिण में स्थित एक अलग ही स्वतंत्र भौगोलिक प्रदेश के रूप में नजर आता है' से होता है जिसके उत्तर-पश्चिम में किर्थर, सुलेमान और हिन्दुकुश पर्वत श्रृंखलाएं हैं... (पृ. 2)। लेखक यह नहीं बताते कि यह श्रृंखलाएं पाकिस्तान से संबद्ध हैं। इस पाठ में भारत की भौगोलिक सीमा से लगे पड़ौसी राज्यों की चर्चा ही नहीं है। लेखक मातृ भाषा का अर्थ बताते हुए कहते हैं कि मातृ भाषा वह भाषा है जिसका उपयोग व्यक्ति की मां ने व्यक्ति के बचपन में बात करने के लिए किया है (पृ. 8)। ठीक ऐसे ही दुर्गम इलाकों में रहने वाले समुदायों को, जो सामाजिक विकास की प्रक्रिया में मैदान में बसे कृषक व नगरीय समाज के मुकाबले पिछड़ गए, जनजाति कहते हैं (पृ. 10)। अध्याय सात में राजस्थान का वर्णन करते हुए उल्लेख है कि भारत की तरह हमारा राज्य भी एक धर्म निरपेक्ष राज्य है अर्थात् यहां सभी प्रकार के धर्मों को मानने वाले लोग रह सकते हैं। यह राज्य हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, इसाई, जैन, बौद्ध और इन मुख्य धर्मों के कई सम्प्रदायों जैसे शैव, वैष्णव, शिया, सुन्नी, मेव, पठान की जन्म और कर्म भूमि है (पृ. 59)। इस दृष्टि से राजस्थान भारत की तरह एक स्वतंत्र राज्य है जो धर्म निरपेक्ष है और यहां अनेक धर्म व सम्प्रदाय उत्पन्न हुए हैं। अध्याय नौ (समकालीन भारतीय समाज) में भारतीय सामाजिक व्यवस्था में विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता रहा है जो अब परिवर्तन के कारण पवित्र संस्कार से समझौते की स्थिति में आ गया है, का उल्लेख है (पृ. 73)। यहां हिन्दू सामाजिक व्यवस्था भारतीय सामाजिक व्यवस्था हो गई है तथा पवित्र संस्कार के उल्लेख से लगता है कि कुछ संस्कार अपवित्र भी होते हैं। लेखक के तर्क हैं कि (1) जाति के धार्मिक आधार समाप्त हो रहे हैं (2) जाति सामाजिक संस्था के रूप में मजबूत हो रही है (3) वर्चस्व स्थापित करने की होड़ ने जातीय सद्भाव को ठेस पहुंचाई है (4) जातीय भाई-चारे की भूमिका प्रारम्भ में चुनाव जीतने में निर्णायक रहती थी पर अब जाति चुनावी राजनीति का आधार बन गई है (5) आरक्षण की मांग बढ़ती जा रही है

और इसने राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लिया प्रतीत होता है और (6) आरक्षण एवं संरक्षण प्राप्त जाति वर्गों में एक शिक्षित एवं शक्तिशाली मध्यम वर्ग का उदय हो चुका है (पृ. 75-76)। लेखकों के ये तर्क जाति के एक पक्षीय स्वरूप से जुड़े हैं और जाति की प्रशंसा करते नजर आते हैं। साथ ही लेखकों को जाति एवं वर्ग के मध्य अन्तर करने की आवश्यकता नहीं लगी। लेखक अनुसूचित जन जातियों को 'आदिवासी जातियों' का उद्‌बोधन देते हैं (पृ. 82)। चूंकि जाति हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का भाग है अतः 'आदिवासी जातियों' शब्द का प्रयोग कर सभी जन जातियों को हिन्दू बता दिया गया है। ठीक ऐसे ही अनुसूचित जातियों एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के अर्थ भी अस्पष्ट एवं त्रुटिपूर्ण हैं। अध्याय 12 में पंथ निरपेक्षता का अर्थ बताते हुए कहा गया है कि राज्य सभी पंथों की समान रूप से रक्षा करेगा और स्वयं किसी भी पंथ को राज्य के धर्म के रूप में नहीं मानेगा (पृ. 92)। अध्याय 15 में कहा गया है कि वर्तमान समय में भी कुछ कानून परम्पराओं, रीति रिवाजों एवं धार्मिक मान्यताओं पर आधारित होते हैं। ये सामाजिक कानून कहलाते हैं (पृ. 110)। अवधारणाओं के त्रुटिपूर्ण अर्थ इस पुस्तक में अनेक स्थानों पर हैं जो 'भ्रामक ज्ञान' को जन्म दे सकते हैं। इस पुस्तक में 'राष्ट्रीय सुरक्षा' पर अध्याय 16 को केन्द्रित किया गया है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय गौरव के एक पक्षीय अर्थ हेतु 'सुरक्षा' पर बल दिया जाना आवश्यक है, ऐसा लगता है। अध्याय 17 में औरंगजेब के बाद के समस्त मुगल शासकों को निकम्मा तथा विलासी कहा गया है (पृ. 124)। साथ ही कहा गया है कि मुगल काल में अधिकांश शासक राष्ट्रीय दृष्टिकोण के शासक नहीं हुए (पृ. 125)। लेखकों की दृष्टि में 18वीं शताब्दी में भारतीय समाज में निवास करने वाले हिन्दू एवं मुस्लिमों में समान रीति रिवाज प्रचलित थे (पृ. 127)। राष्ट्रीय आन्दोलन से संबद्ध 22 वे अध्याय में महात्मा गांधी, लाजपत राय, भगतसिंह, हेमू कालाणी, सावरकर, सुभाष चन्द्र बोस को औपनिवेशिक शासन का विरोध करने वाले प्रमुख नेताओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अन्य प्रमुख नेताओं जैसे नेहरू, नौरोजी आदि की पूर्ण उपेक्षा की गई है। साथ ही प्रमुख नेताओं, जिनकी लेखक चर्चा करते हैं, के योगदान एवं जीवन परिचय अपूर्ण हैं जैसे गांधी की हत्या का उल्लेख नहीं है (देखें अध्याय 22, पृ. 157-166)। औपनिवेशिक शासन का साथ देने वाले राजाओं सामन्तों एवं संगठनों की भूमिका पर टिप्पणी नहीं है। यह पुस्तक 1587 के स्वतंत्रता संग्राम संबंधी 18वें अध्याय से 'सिलेक्टिव विवेचना' को और व्यापकता से अपनाती है। अध्याय 23 (आजादी के बाद का भारत) में बिखराव चरम रूप में है। नेहरू अनुपस्थित हैं, सरदार पटेल की प्रमुख उपस्थिति है। राजेन्द्र प्रसाद की चर्चा है पर अम्बेडकर की उपेक्षा है। विस्थापितों के योगदान का उल्लेख है पर प्रश्न सिन्धी विस्थापितों के योगदान पर पूछा गया है (पृ. 179)। गुट निरपेक्ष आन्दोलन पर भी टिप्पणी नहीं है। ये सभी पाठ (पाठ 18 से पाठ 23) एक पक्षीय, पूर्वाग्रही एवं अपूर्णता का प्रतिनिधित्व करते हैं। पाठ 24 (हमारे गौरव) में चन्द वरदाई, गणितज्ञ ब्रह्म गुप्त, विश्व के प्रथम शल्य चिकित्सक महर्षि सुश्रुत, गणितज्ञ रामानुजम, महाकवि माघ, सूत्रधार मण्डन, महर्षि पाराशर, चक्रपाणि मिश्र एवं शारंग धर का विवेचन है (पृ. 180-186)। सूत्रधार मण्डन के विवेचन में कहा गया है कि मण्डन उस काल में हुए जबकि मन्दिर, मूर्ति और चित्रकला आदि संकट में थे (पृ. 184)। यह संकेत मध्य युगीन भारत की तरफ है।

असल में ये समस्त पुस्तकें 'हम' बनाम 'वे' अर्थात हिन्दु (इनके अनुसार भारतीय) एवं अन्य (विशेषतः मुस्लिम) के मध्य विभाजन को वैधता देने की कोशिश कर धर्मनिरपेक्षता, सहिष्णुता एवं साझा सांस्कृतिक विरासत पर प्रहार करती हैं। हिन्दु समाज ही भारतीय समाज है का संकेत ये पुस्तकें करती हैं एवं संवैधानिक मूल्यों की अवहेलना करती हैं। सरकारी एवं निजी विद्यालय, जो राजस्थान बोर्ड से संबद्ध हैं, में निम्न वर्ग के विद्यार्थियों की संख्या सर्वाधिक है। इस पीढ़ी को सामाजिक विभाजन की शिक्षा देकर ध्रुवीकरण की प्रक्रिया को भविष्य में गति देने की संस्थागत कोशिश इन पुस्तकों का लक्ष्य है। इस दृष्टि से ये पुस्तकें शिक्षा की दृष्टि से 'खतरनाक' हैं और राजसत्ता के उन हितों की पूर्ति का माध्यम है जो धर्म निरपेक्ष भारत के अस्तित्व के नकार से संबद्ध हैं। ◆

लेखक परिचयः राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के समाजशास्त्र विभाग से प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त होने के बाद शिक्षा एवं सामाजिक मुद्दों पर सक्रिय हैं।